"सिकिरमा : एक पुनर्वासित आदिवासी गाँव का मानवशास्त्रीय अध्ययन"

भूमिका:-

भारत में आदिवासी जनसमूहों का विस्थापन व पलायन तो सादियों पहले से ही जारी है परन्तु इधर विकास के नाम पर बरती गई नीतियों के कारण अपनी जमीनों, जंगल, संसाधन व गाँव से ही बेदखल नहीं हुए बल्कि उनके मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं, जीवन-शैलियों, भाषाओं एवं संस्कृति से भी उनके विस्थापन प्रक्रिया तेज होती आयी है। इस विस्थापन में सरकारी हस्तक्षेप व नीतियों के साथ - साथ, तथाकथित मुख्य धारा के समाज द्वारा उनके संसाधनों पर कब्जा करके उन्हें बेदखल कर देना भी विस्थापन व पुनर्वास का मुख्य कारण रहा है।

आजादी के बाद योजनाबद्ध विकास से आर्थिक क्षेत्र में विशेषतया ऊर्जा, खनिज, भारी उद्योग, सिंचाई तथा आधारभूत विकास कार्यों में क्रांतिकारी प्रगति तो हुई लेकिन इस प्रगति के लिए उन लाखों लोगों को क्रांतिकारी प्रगति तो हुई लेकिन इस प्रगति के लिए उन लाखों लोगों को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी जिन्हें बिना इच्छा के अपनी जमीन और रोजी-रोटी से हाथ धोना पड़ा। उनका थोड़ा बहुत तो पुनर्वास तो किया गया लेकिन वह बहुत ही अपर्याप्त था। उनके मूलभूत अधिकार जो उनकी जमीनों के साथ जुड़े हुए थे, जैसे जंगल व जंगल उत्पाद तथा जमीन के विशेष अधिकार, पुनर्वासित होने पर भी उन्हें प्राप्त नहीं हो पाए। हर देश में विकास नीति का लक्ष्य प्राय: यही होता है। इस विकास नीति में खासकर आदिवासियों को इसकी कीमत चुकानी पड़ती है।

स्वतंत्रता के पश्चात पहले पचास से अधिक वर्षों में आदिवासी विकास की दृष्टि से किये गये प्रयासों से विभिन्न कार्यक्रमों और परियोजनाओं ने आदिवासी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन किये है, पर साथ ही इनसे नये विरोधाभाष और असंतोष का भी जन्म हुआ है।

भूमि सबसे महत्वपूर्ण प्रकृति संसाधन है जिसपर सभी मानवीय गतिविधियाँ आधारित होती है। इस प्रकार मानव जाति का लक्ष्य है जितनी अधिक संभव हो भूमि का अधिग्रहण किया जाय, बंजर पड़ी भूमि को दोबारा जीवित किया जाय और इन्हें आगे बंजर होने से रोका जाय। परियोजना द्वारा विस्थापित व्यक्तियों की मूल संरचना सहित सार्वजनिक प्रयोजना द्वारा विस्थापित व्यक्तियों की मूल संरचना सहित सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए भूमि का अनिवार्य अधिग्रहण, उन्हें अपने घर,

संपत्ति तथा आजीविका के साधन छोड़ने के लिए मजबूर कर देता है। उन्हें अपनी भूमि से वंचित होने के अलावा अपनी आजीविका और संसाधन आधार से भी वंचित होना पड़ता है। इस विस्थापन का एक गंभीर मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक परिणाम होते है।

भारत सरकार ने अधिकतम संभव सीमा बड़े स्तर पर विस्थापन को न्यूनतम बनाने की आवश्यकता को पहचाना है, जहाँ विस्थापन अपरिहार्य है, इसे अत्यंत सावधानी से निपटने की जरूरत होती है और परियोजना प्रभावित परिवारों के पुन:स्थापन तथा पुनर्वास से संबंधित मुद्दों को सुलझाने का प्रयास किया जाता है। विकास नीति के निर्धारित लक्ष्य के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में बन रही परियोजनाओं के माध्यम से पूरे समाज को प्रगति की राह पर लाना था लेकिन ठीक इसके विपरीत हुआ। अमीर और गरीब, साधन सम्पन्न और साधन विहिन के मध्य खाई पटने के बजाय और भी गहरी होती गई है। राष्ट्रहित के नाम पर बेशुमार लोगों की जमीनें अधिग्रहित कर उन्हें न केवल विस्थापित किया गया बल्कि उनके संदर्भ में, संविधान में प्रदत्त मलभूत अधिकारों का भी उलंघन किया गया।

आदिवासी समूहों के हितों की रक्षा और उन्हें बढ़ावा देने के लिए भारतीय पुनर्वास परिषद का गठन किया गया है। परन्तु वर्तमान समय में अक्सर यह देखा जा रहा है कि आदिवासी समूहों के लिए उनकी संस्कृति और उनकी अपनी इच्छाएं, आवश्यकताओं के अनुरूप तर्कसंगत उपाय सामील करने पर अवश्य विचार किया जा रहा है, ताकि इनका सहीं ढंग से सही दिशा में विकास सुनिश्चित किया जा सके।

पुनर्वास का अर्थ होता है, ऐसे लोगों तथा समुदायों को जो किसी कारणवश बेघर हो जाते है, उनके लिए रहने की व्यवस्था करना पुर्नवास कहलाता है। आमतौर पर विस्थापन का समाधान पुनर्वास ही रहा है। लेकिन विस्थापन एक उलझी हुई प्रक्रिया है। यह उतनी सिधी और आसान नहीं है जितनी ऊपर से दिखती है। पुर्नवास का अर्थ सिर्फ मकान और मुआवजा भर नहीं है, जीवन की और भी जरूरते है, पानी, इंधन, चारा, खेती, रोजगार, सब कुछ चाहिए। जो नई जगहों पर प्राय: नहीं मिलता है। कई बार यह होता है कि जिन्हें हटाया जा रहा है उन्हें पता ही नहीं होता उन्हें क्यों और किस उद्देश्य से हटाया जा रहा है। इस प्रक्रिया में उनके साथ बड़ी नाइंसाफी होती है। उनके हितों और अधिकारों के हनन में घोर सामाजिक हिंसा होती है। नगद रूपये में दिये जाने वाले मुआवजे की पद्धति भी काफी जटिल और मुआवजा पाने वाले को गहरी क्षति पहुँचाने वाली होती है। उल्लेखनीय बात यह है कि अधिनियम में

केवल व्यक्ति के मुआवजे को मान्यता दी गई है। सामूहिक या सामुदायिक अधिकारों की बात का उसमें जिक्र भी नहीं है।

पुनर्वास तथा विस्थापन का प्रमुख कारण:-

विस्थापन तथा पुनर्वास के समान्य कारण निम्न होते है।

1. विस्थापन तथा पुर्नवास का सबसे कारण बड़ा जल विद्युत और सिंचाई योजनाएं।
2. अन्य कारणों में खदाने, ऊष्मा और आणविक शक्ति के बड़े-बड़े कारखाने।
3. औद्योगिक वस्तियाँ संस्थानों की स्थापना, अस्त्र-शस्त्र परीक्षण का मैदान।
4. नई रेल पथ तथा नई सड़के।
5. आरक्षित वनों का विस्तार, वन संरक्षण, वन ग्राम।
6. वन्य पशुओं के शरण स्थल एवं पार्क।
7. मानवहितार्थ तकनीकी हस्तक्षेप जिससे बड़े पैमाने पर मछुआरों, दस्तकारों और हथकरघा बनुकरों को अपने स्थान बदलने पड़े हैं।

आदिवासी कौन? वर्तमान स्थिति में आदिवासी शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा पराम्पराओं से सजे और सदियों से जंगलों पहाड़ो में जीवन यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को सम्भाल कर रखने वाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है और बहुत बड़े पैमाने पर उनके सामाजिक दुःख तथा नष्ट हुए संसार पर दुःख प्रकट किया जाता है। अनके भारतीय तथा पाश्चात्य समाज वैज्ञानिकों और विचारों ने 'आदिवासी कौन?' इस विषय पर सविस्तार चर्चा करने के उपरांत अपने ग्रंथों में कुछ परिभाषाओं को उद्धृत किया है। इनमें गिलिन और गिलिन, डल्ब्यू, जे.पेरी, डी. रीवर्स, बोगार्डस, डी. एन. मजुमदार आदि अध्येताओं का उल्लेख करना प्रसांगिक है। इनके द्वारा दी गई 'आदिवासियों' की परिभाषा अर्थपूर्ण है। भारतीय संविधान ने उन्हें 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में सम्बोधित किया है।

एक विशेष पर्यावरण में रहने वाला, एक सी बोली बोलने वाला, समान जीवन शैली से सजा, एक-से देवी-देवताओं को मानने वाला, समान सांस्कृतिक जीवन यापन करने वाला परंतु अक्षर ज्ञान रहित मानव समूह यानी आदिवासी इस प्रकार का अर्थ विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर लिया जा सकता है। वास्तव में आदिवासी आर्यों से पूर्व का मानव समूह है वह इस भूमि का मूल मालिक है। सही अर्थ में वह ही क्षेत्राधिपति है। इसलिए कुछ अध्येताओं ने उन्हें 'अवॉरिजनल' कह कर संबोधित किया

है, जो उचित भी है। भारत के लोग अधिकार अनुसूचित जनजातियों को आदिवासी कहते है और इस रिपोर्ट में इन दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया गया है। संस्कृत में आदिवासी शब्द का अर्थ, किसी क्षेत्र के मूल निवासी जो आदिकाल से किसी स्थान विशेष में रहते चले आ रहे है। माना जाता है कि आदिवासी भारतीय प्रायद्वीप के सबसे प्राचीन बाशिन्दे या मूल निवासी है।

हर देश में विकास नीति का लक्ष्य प्राय: यही होता है कि सबको विकास का समान अधिकार मिले, लेकिन हमारे देश में आज आजादी के छठे दशक में भी हमारा अनुभव यही जाहिर करता है कि इन नीतियों से कुछ लोगों का विकास असंख्य लोगों की कीमत पर हुआ है, खासकर जनजातियों को इसकी कीमत-चुकानी पड़ी है। विकास नीति के निर्धारित लक्ष्य के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में बन रही परियोजनाओं के माध्यम से पूरे समाज को प्रगति की राह पर लाना था, लेकिन हुआ ठीक इसके विपरीत। आवश्यकता थी कि विकास परियोजनाओं से प्रदेश अथवा क्षेत्र का आर्थिक संतुलन न बिगड़े और सभी संसाधनों का लाभ सभी वर्गों को प्राप्त हो। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, बल्कि विकास के बदले विशेष क्षेत्रों व प्रदेशों की जनता का विध्वन्स ही हुआ है।

भूमि अधिग्रहण बिल और पुर्नवास बिल दोनों एक ही मंत्रालय से निर्गत होते है। जो एक दूसरे के विपरीत है। ये तथ्य जाहिर करते है कि सरकार अपनी उदार नीति के तहत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को लाने की जल्दबाजी में जमीन लेने की हड़बड़ी में है, खासकर आदिवासियों की क्योंकी देश के संसोधनों का बड़ा हिस्सा उन्ही क्षेत्रों में पड़ता है, जहाँ आदिवासी बहुतायत में निवास करते है। देश आजाद होने से पहले अंग्रेजों ने आदिवासियों को जंगल में प्रवेश पर रोक लगाकर आदिवासियों को वहाँ से खदेड़ने की योजना लागू करनी शुरू कर दी थी। इन्हें जंगल की उपज के सब अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया था। दरअसल सरकार की ये अभिरूचियों पर आधारित था। आजादी के बाद औद्योगीकरण तथा व्यापारियों की धन-लिप्सा, इनका आधार बन गई थी। इस प्रकार अपने ही देश की सरकार द्वारा जंगल वासियों के उनके परम्परागत वन अधिकारों से लगातार वंचित किया जाता रहा है तथा जंगल का व्यवसायिक होने के कारण उनके जंगलों को बर्बरता पूर्वक उजाड़ा भी गया था। इस प्रकार आजादी के बाद की सरकार ने न केवल साम्राज्यवादी सरकार के सिद्धांतों को दोहराया बल्कि उन्हे और भी सशक्त और सबल बनाया, जंगल पर राज्य के बन विभाग का एकाधिकार स्थापित होना। एकाधिकार स्थापित होने के कारण शासकों ने जंगल को एक मुनाफे का वस्तु बना दिया और सरकारी अधिकारियों, नेताओं, ठेकेदारों

ने मिलकर बर्बतापूर्वक उसे बर्बाद किया। ठेकेदारों द्वारा जंगलों की निर्मम कटाई की प्रतिक्रिया स्वरूप ही उत्तराखण्ड में 'चिपको आंदोलन चला। बिहार-झारखण्ड में सखुआ के जंगल काटकर सागवान और सफेदे (यूकेलिप्टस) के जंगल लगाने का जबरदस्त विरोध हुआ क्योंकि मिश्रित जंगल आदिवासी को रोजगार, पानी और वर्षा देता है। वह कटाव का संरक्षण तथा पानी के स्रोतों की रक्षा भी करता है, जबकी सफेदे का जंगल पानी के स्रोत को सुखा देता है। सखुआ का पेड़ आकाल में भी उनके जीवन की रक्षा करता है। उनके बीजों से पेट भर कर वह जिंदा रहता है। बीड़ी-पत्तों के पेड़ उसे रोजगार देते है। कुसुम के पेड़ तेल देते है तथा महुआ के फल और फूल भोजन और पेय दोनों देते है। इसके विपरीत सागवान का पेड़ बड़ी-बडी टालों की तिजोरियों को भरता है। वह न तो जंगल वासी का पेट भरता है और नही उसे रोजगार देता है, उल्टे व्यापारी और जंगल माफिया पेड़ उससे सस्ते दामों पर खरीद कर ऊँचे दामों पर बेचता है। पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दण्ड भरता है या जेल जाता है।

विस्थापन तथा पुनर्वास के कारण जनजातियों को हमेशा से कई समस्याओं का सामना करना पड़ता रहा है। छत्तीसगढ़ राज्य के सिकिरमा ग्राम में भी वनग्राम पुनर्वास कार्यक्रम के तहत लगातार 40 वर्षों से अब तक पुनर्वास कराया जा रहा है। इससे जनजातियों को सामाजिक-सांस्कृतिक ह्रास हो रहा है। यह एक अनोखा पुनर्वास समझा जा सकता है क्योंकि यहाँ निवासरत जनजातियों को परियोजनाओं से मिलने वाले लाभ से लाभांवित हो रहे हैं। परन्तु जनजातियों की सामाजिक-सांस्कृतिक ह्रास को ध्यान ने रखते हुए, आदिवासी जनता के हितों की हिफाजत करना सर्वोच्च प्राथमिकता है ऐसा ढांचा विकसित किया जाना चाहिए जो आदिवासी और गैर-आदिवासी मेहनतकश जनता के सभी हिस्सों की एकता बरकरार रखते हुए आदिवासियों को आगे बढ़ा सके। आदिवासियों के हिस्से के रूप में देखा जाना चाहिए। इसलिए संवैधानिक सुरक्षा उपायों, प्रशासनिक ढांचों की सीमाओं के सवाल को इस बुनियादी समस्या के दायरे में रखकर ही देखना चाहिए कि आदिवासी जनगणना की पहचान की रक्षा कैसे की जाय।

पूर्व में किये गये अध्ययन:-

भारत डोगरा, जनसत्ता, 11 अक्टूबर 2012 के अनुसार देश में विकास के मौजूदा दौर में विस्थापन की समस्या बहुत विकट हो गई है। हाल ही में जन सत्याग्रह संवाद के कायक्रम के अंतर्गत देश के लगभग साढ़े तीन सौ जिलों में भूमि संबंधी समस्याओं को नजदीक से देखने का जो प्रयास किया गया, उसमें अनेक जन सुनवाईयों और जन सभाओं में विस्थापन संबंधी समस्याओं की गंभीरता उभर कर सामने आई। जन सुनवाइयों और जन सभाओं से पता चलता है कि विस्थापन का खतरा विभिन्न स्तरों पर कितना गंभीर हो चुका है और विस्थापन की समस्या को न्यूनतम करने के लिए उचित नीतियाँ बनाना कितना जरूरी हो गया है।

शशिकांत मिश्र, नव भारत टाइम्स, 15 सितम्बर 2007 "फिर उजड़ने को मजबूर है टिहरी के विस्थापित" के अनुसार टिहरी डैम प्रोजेक्ट से प्रभावित और विस्थापित अनेक लोग धक्के खाने को मजबूर है टिहरी के थापला, सुनार गाँव, खांड

गाँव और कोटि गाँव में सबसे ज्यादा उपजाऊ जमीन खांड गाँव की मानी जाती है। इस गाँव से सैकड़ों परिवार विस्थापित हुए है। इस परियोजना के तहत विस्थापितों को दस दस एकड़ जीमन दे दिया गया है। जमीन देने से पहले यह भी जायजा नहीं लिया गया कि वह जमीन कृषि योग्य है भी या नहीं। इस जमीन पर विस्थापित लोग जंगली हाथियों और सुअरों से घिरे क्षेत्र में जमीन जोत-बो रहे है और अपनी जंगली जीविका चला रहे है। उन्हें रहने के लिए मकान की सुविधा भी नहीं मिली है तथा कुछ लोगों ने मिलकर नाले के साथ दीवार बनाये, वह भी बरसात में पानी के तेज बहाव को नहीं सहपाई और टूट गई।

संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी एजेंसी, 1 जून 2012 के अनुसार बताया कि विश्व भर में विस्थापितों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ रही है और उसके आँकड़े के मुताबिक वर्तमान में दुनियां भर में चार करोड़ से भी अधिक विस्थापित मौजूद है। शरणार्थियों पर जारी रिपोर्ट में संस्था ने कहा है कि जो 4.3 करोड़ लोग विस्थापित हुए है उसके कारण है- संघर्ष, प्राकृतिक अपदा और जलवायु परिवर्तन। संस्था का कहना है कि इन लोगों के पुर्नस्थापन के लिए जो कोशिशे हो रही है वे नाकाफी है। छः साल में विश्व में शरणार्थियों की स्थिति पर ये पहली रिपोर्ट है और संयुक्त राष्ट्र एजेंसी का कहना है कि इन वर्षों में विस्थापितों और उनकी मदद करने की कोशिश में लगी संस्थाओं की समस्याएं और ज्यादा जटिल हुई है। दुनिया भर में तकरीबन चार करोड़ 30 लाख लोगों को मजबूरन विस्थापित होना पड़ा है।

चंचल, 22 नवम्बर 2012 "विकास को विकास ने भरमाया है" में कहते है कि विकास एक सापेक्ष क्रिया है और विस्थापन इंसान की सबसे बड़ी मजबूरी। विस्थापित हो रहे लोगों को दो श्रेणी में रखा जा सकता है। एक जो विकास की योजनाओं के आधार पर हटाये जा रहे है। दूसरे रोजगार और मंजूरी के लिए विस्थापित हो रहे है। इन दोनों पर ही सरकार की तरफ से सार्थक पहल की जरूरत है क्योंकि बड़ी परियोजनाओं से विस्थापित आदिवासियों की बहुसंख्या लुप्त हो जाने लगी है, क्योंकि आदिवासी लोग प्राकृतिक संसाधनों पर ज्यादा निर्भर रहते है। उन्हें लगातार जायदाद खोने, बेरोजगारी, कर्ज वंधुआ तथा भुखमरी का खतरा बना रहता है वे विस्थापन तथा पुनर्वास के लिए अनिच्छुक रहते है परन्तु उन्हें भोले-भाले पन के बजह से विस्थापन तथा पुनर्वास का शिकार होना पड़ता है।

अमिताब पाण्डेय, अप्रैल 2011, 'झारखण्ड टुडे' विशेष में कहते है कि विस्थापन व पुनर्वास में शिक्षा का अधिकार भी गुम होता जा रहा है। केंद्र सरकार और राज्य

सरकार शिक्षा का अधिकार अधिनियम का पालन करते हुए हर बच्चे को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए संकल्पित है। परंतु क्या वैसे बनवासी आदिवासी परिवार विस्थापित होकर अपने बच्चो को शिक्षा का अधिकार दिला पा रहे है अथवा नहीं। इसका कोई आँकड़ा नहीं है। सैकड़ों की संख्या में बच्चे पढ़ाई से वंचित है। प्रशासन विस्थापित परिवारों के बेहतर पुनर्वास के प्रति गंभीर नहीं है इसलिए बच्चों को शिक्षा के उचित इंतजाम भी नहीं हो पाये है। देश-प्रदेश में कई पुनर्वास स्थल है जहाँ के बच्चे शिक्षा के अधिकार का इंतजार कर रहे है।

राज किशोर महतो, 16 अगस्त 2010 'झारखण्ड में बदलती परिस्थिति'' में बताते है कि औद्योगिक विस्तार के लिए लाखों एकड़ जमीन सरकार के द्वारा अधिग्रहित की गई, सरकारी उपक्रमों एवं पब्लिक अंडरटेकिंग्स के लिए, हजारों एकड़ खेती योग्य भूमि नदियों पर बाँधे गये बाँधों में डूब गये। हजारों एकड़ जंगल साफ हो गये। झारखण्ड के मूल निवासियों को चौरफा मार झेलनी पड़ी है एक तो वे लोग अपनी जमीनों से विस्थापित होने लगे। विस्थापित होने के साथ साथ बाहरी संस्कृति के प्रवेश से सांस्कृतिक विस्थापन भी शुरू हुआ। सरकारी उपेक्षा के चलते विस्थापितों को कभी उचित मुआवजा भुगतान नहीं मिला। उनके पुनर्वास की कोई नीति नहीं बनाई गई और न ही उकना पुनर्वास कराया गया। इस कारण गरीब लोग देश के दूसरे प्रदेश में पलायन करने लगे है। जिस कारण आदिवासियों की संख्या दिन प्रति दिन घटना ही जा रहा है।

सुनील शर्मा, 18 सितम्बर, 2011 बिलासपुर के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य में अचानकमार टाइगर रिजवी में बैगा जनजातियों का गैर कानूनी विस्थापन हो रहा है। विस्थापन के नाम पर वन विभाग का जंगल राज चल रहा है। अचानकमार टाइगर रिर्जव में बाघों को बचाने के नाम पर वहाँ सैकड़ो सालों से रहे वाले बैगा आदिवासियों को हटाया जा रहा है। आदिवासियों को हटाये जाने के नाम पर पिछले 2 सालों में तमाम नियम कायदे और कानून को ताक पर रख कर वन विभाग का जंगल राज चल रहा है। उसने इन बैगा आदिवासियों के सामने जीवन-मरन का प्रश्न पैदा कर दिया है। मनमाने जंगल कानून की मार अब विस्थापित बैगा अदिवासी झेल रहे है और करीब 19 विस्थापन की तलवार गांवों पर लटक रही है और इन गाँवों के हजारों आदिवासी विस्थापन का हाल देख कर डरे हुए है।

शिशिर खरे, 5 अप्रैल 2010 के अनुसार सरदार सरोवर दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा बाँध है। यह 800 मीटर नदी में बनी परियोजना है। सरकार कहती है कि वह इससे पर्याप्त पानी और बिजली मुहैया कराएगी। मगर सवाल है कि क्या पुनर्वास कर

जिन शर्तों के आधार पर बाँध को मंजूरी दी गई थी वह शर्ते भी अब तक पुरी हो सकी? तत्कालीन मध्य प्रदेश सरकार ने भी स्वीकारा था कि वह इतने बड़े पैमाने पर लोगों का पुनर्वास नहीं कर सकती। इसीलिए 1994 को राज्य सरकार ने एक सर्वदलीय बैठक में बाँध की ऊँचाई कम करने की मांग की थी, ताकि होने वाले आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक और पर्यावरणीय नुकसान को कम किया जा सके। इन सब के बावजूद कुल 245 गाँव, कम से कम 45 हजार परिवार, लगभग 2 लाख 50 हजार लोगों को विस्थापित करना पड़ सकता है। अब तक 12 हजार से ज्यादा परिवारों के घर और खेत डूब चुके है।

बलिराम सिंह, 27 सितम्बर, 2012 फरीदाबाद के अनुसार फरीदाबाद शहर के 17 हजार स्लम परिवारों को पुनर्वासित करने के लिए नगर निगम ने एक बार फिर से तैयारी तेज कर दी है। नगर निगम एक बार फिर से इन स्लम परिवारों का सर्वे करने की तैयारी कर रहा है। ताकि जरूरतमतों को ठीक ढंग से पुनर्वासित किया जा सके। हालांकि पुनर्वास की कबायद में प्रभावित होने वाले करीब दो लाख लोगों की संख्या देखकर लगता है कि इन स्लमवासियों को पुनर्वासित करना अधिकारियों के लिए बड़ी चुनौती है फिलहाल निगम ने शहर के दो इलाकों में लगभग 64 करोड़ रूपये की लागत से 3208 फ्लैटस का निर्माण कराया है। लेकिन इन फ्लैटस में अब तक महज 200 परिवार ही पुनर्वासित हुए है अधिकांश स्लमवासी इन फ्लैटस में जाना नहीं चाहते है।

डॉ. दिनेश कुमार मिश्र की पुस्तक "दुई पाटन के बीच में" लिखते है कि कोसी क्षेत्र और समस्या में रूचि रखने वालों के बीच आज भी यह प्रचलित है कि कोसी तटबंधों के बीच 304 गाँव फँसे है। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि सुपौल के पुनर्वास कार्यालय के अधिकारी और कर्मचारी भी यही जानते और कहते हैं मगर इन गांवों को सूची देते समय उनकी कलम 285 की संख्या पर अटक जाती है। जहाँ तक कोसी तटबंधों के बीच फंसी आबादी का सवाल है उसके बारे में अलग-अलग लोग अलग-अलग संख्या बताते है। यह संख्या 8 से लेकर 16 लाख के बीच घुमती है। इस अध्ययन के अनुसार कोटी तटबंधों के बीच 380 गाँव है जो कि 4 जिलों के 13 प्रखण्डों में फैले हुए है और उनकी आबादी (2001) जनगणना के अनुसार 9.88 लाख है।

पुरुषोत्तम शर्मा, नैनीताल समाचार, 14 सितम्बर 2011 के अनुसार उत्तराखण्ड 'अपदा एवं पुनर्वास नीति 2011' एकदम निराशाजनक है। इसके अनुसार पुनर्वासित होने वाले सभी गाँवों व परिवारों को राज्य सरकार लगभग एक आवासीय भूमि व

तीन लाख रूपये आवास निर्माण के लिए देगी। इसके बाद खाली कराये गये गाँवों व लोगों की कृषि व आवासी भूमि व सर्किल रेट से मुआवजा देकर अधिग्रहण कर उस जमीन को राज्य के खाते में डाल देगी, ताकि पुनर्वासित लोग फिर कभी अपनी उस भूमि का प्रयोग न कर सके। इन गाँवों की वन पंचायते, बेनाप बंजर जमीन व चारागाह, जिनका उपयोग लोग अपनी रोजमरा की जरूरतों व रोजगार के लिए करते थे, स्वत: ही सरकार के कब्जे में चले जायेंगे। इस नीति के जरिये आजीविका का मुख्य साधन छीनकर सरकार ने आपदा पीड़ितों को भुखमरी के लिए छोड़ दिया है।

सलमान रावी, 30 जुलाई 2012, बी॰बी॰सी॰ संवाददाता, छत्तीसगढ़ के अनुसार इंसानों और जानवरों के बीच एक लम्बे अरसे से चली आ रही संघर्ष से छत्तीसगढ़ का बारनवापारा अभ्यारण्य भी अछूता नहीं है। इन जंगलों में इंसानो की आबादी वर्ष 1982 के आस पास बसना शुरू हो गई थी। इन्हें अंग्रेजों ने अपने काम के लिए बसाया था। आज इस अभ्यारण्य में लगभग 22 गाँव है इस गाँव में रहने वाले अधिकतर आदिवासी तथा कुछ पिछड़ी जातियाँ भी रह रही है। यहाँ कई दशक बीत जाने के बाद भी इंसान और अभ्यारण्य में रहने वाले जानवरों के बीच चल रहा संघर्ष जारी है। यही कारण है कि यहाँ रहने वाले लोगों को भी अपनी आजीविका चलाना मुश्किल होता जा रहा है।